THE HINDU

Date: 06-10-26

Good, not good enough

Without raising sports standards, India should not bid for hosting Olympics

Editorial

Aspiring to host the Olympic Games in 2036, India faced a harsh reality check at the Aichi-Nagoya Asian Games. Compared with the previous Hangzhou Games, where it won 106 medals with a 650-plus contingent, the country won 85 medals from around 500 athletes. The aggregate fell short of an internally projected figure of around 100 medals. It is likely to invite a thorough postmortem, given the hundreds of crores of public money spent on the athletes' preparation. India laboured to 21 gold medals, seven fewer than in Hangzhou, after a late surge of 11 top honours in the last two days, driven by the exploits of archers, boxers, wrestlers, and hockey and cricket players. It tied with Uzbekistan but managed to retain its fourth spot on the strength of a bigger haul of silver. Thirteen of the gold medals came from team events, with cricket, kabaddi and hockey making a clean sweep of titles. It underscored a stark reality: the country needs to raise its bar in medal-fetching individual sports, such as athletics, swimming, gymnastics, fencing and cycling, which determine success in multi-disciplinary Games. China, the runaway winner with a massive aggregate of 341 medals, including 169 gold, secured 54 medals in swimming alone. Barring athletics, India stood nowhere.

On a brighter note, India fielded 310 debutants and recorded a marginal increase in its athlete-to-medal ratio ahead of Los Angeles 2028. Several historic performances provided reasons to rejoice. Seventeen-year-old rookie recurve archer Kumkum Mohod dismantling the Korean women's hegemony to help the archery team contribute five gold medals was a defining moment. Trap shooter Neeru Dhanda, golfer Pranavi Urs, wrestler Sujeet Kalkal and the women's hockey team, which upset Paris Olympics silver medallist China to clinch gold after 44 years, hogged the limelight. Lovlina Borgohain, Aman Sehrawat, Mirabai Chanu, Vithya Ramraj and Gulveer Singh lived up to their billing. Boxers, wrestlers and golfers registered noticeable improvement. Olympic quota places in archery and hockey added to the excitement. Indian women catching up with men — both genders delivered 38 medals apiece — was another encouraging sign. On the flip side, India's two major contributors, athletics and shooting, which earned 24 and 15 medals, respectively, yielded 12 fewer medals than in 2023. The shuttlers slipped, while the tennis players returned empty-handed after 40 years. P.V. Sindhu and Manu Bhaker flopped. Stricter scrutiny of athletes' funding and efficient implementation of the revamped Khelo India scheme, designed with a long-term vision, are essential for course correction. Without propelling India's sporting standards, a bid to host the Olympics may become a countdown to international embarrassment.

Date: 06-10-26

Bird islands

India's conservation efforts must go beyond symbolism

Editorial

This week, at the Desert National Park in Jaisalmer, two male Great Indian Bustards were released into the wild. It was a ceremony with considerable bureaucratic pomp; the Union and the Rajasthan Environment Ministers were in attendance. The conservation plan now has 97 birds, with nine more awaiting release. Of these, 57 are captive-bred and have produced 29 chicks this year and 24 last year. These are notable numbers for a species with a population of around 120 that has teetered on the brink of extinction for nearly half a century. It is worth recounting the bird's conservation travails. Ornithologist Salim Ali wanted it as the national bird, so that protection would follow; the Indian Board for Wildlife chose the peacock instead. Numbering about 1,260 in 1969, it dipped to 600 by 2000, and 140-175 in Rajasthan by the 2010s. Hunters, royal ones included, prized the bird, with shooting reportedly lasting into the late 1970s. The rise of irrigation in Rajasthan led to the grasslands, which were once dismissed as 'wastelands,' give way to irrigated, pesticide-soaked fields and roads making the bird more vulnerable. The most recent threat came in the form of high-tension power lines. As a heavy bird, the bustard tends to fly at the same height as power lines and has poor vision. The Supreme Court in 2021 ordered that low-voltage lines in priority habitats be underground. After opprobrium from renewable energy companies, on the grounds that this compromised the economics of solar power, the Court modified the order requiring that only a subset of the power lines — those part of the bird's 'critical' habitat — be made underground.

While the cultural links of the 'Godawan' – the bird's local name – to Rajasthan's habitat are now part of government and private marketing efforts, there are several other birds that are not as fortunate. Nearly 1,256 bird species, about 11.5% of the world's total, are classified as threatened. Skylark numbers have fallen nearly 80% and Indian rollers 30% in 12 years. India's conservation policy is captive to symbolism. A tigress from Valmiki flown to Buxa; African cheetahs in enclosures; Gir's lions, confined to Saurashtra and straying into human habitations stoking conflict; the Delhi Ridge, being planted with peepal and banyan that ecologists say do not belong to its dry ecology. The conservation ethos — on paper emphasising coexistence between the wild and human — is practically promoting islands and African-style reserves. These have merits but populations that thrive inside walls overflow into villages and fields, as India's challenges with elephants show. Landscapes, not species, ought to be the unit of conservation.

दैनिक भास्कर

Date: 06-10-26

मरीजों के हक में सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणी स्वागतयोग्य

संपादकीय

सुप्रीम कोर्ट ने उचित ही कहा है कि अस्पतालों में लाचार और अंतिम सांसें गिन रहे रोगियों को कैंसर की दवाएं दस गुना एमआरपी पर बेचना नरसंहार है। ऐसा अमानवीय शोषण रोकना किसका काम है? ये रोगी और उनके परिजन उसी जनता का हिस्सा हैं, जिनके वोट से लोक-कल्याण का वादा कर राजनीतिक दल सत्तासीन होते हैं। जो काम मूलतः सरकार का है, उसे सुप्रीम कोर्ट को क्यों करना पड़ रहा है? क्या सरकार को नहीं मालूम कि जिन दवाओं की लागत मात्र 10-20 रुपए होती है, उनकी एमआरपी 240 रुपए तक रखी जाती है? क्या दवा महानियंत्रक और राज्यों के अधिकारियों को ये तथ्य नहीं मालूम, जिन्हें सामान्य रोगी रोज झेलता है? जिलों के ड्रग इंस्पेक्टरों से लेकर राज्यों और केंद्र के ड्रग कंट्रोल सिस्टम को यह बात क्यों नहीं समझ आई, जिसे सुप्रीम कोर्ट ने सहज ही समझा दिया? सुप्रीम कोर्ट जब भी नीतिगत मुद्दों पर अपनी राय या फैसला देती है तो सरकार का कहना होता है। न्यायपालिका कार्यपालिका के कार्यक्षेत्र में दखल दे रही है। लेकिन अगर कार्यपालिका या विधायिका अपना मूल काम करना बंद कर दें तो न्यायपालिका हाथ पर हाथ धरे तो नहीं बैठ सकती। आज यह स्थिति है कि निजी अस्पतालों का सत्ता में बैठे नेताओं और अफसरों से गठजोड़ है और मध्यम और निम्न वर्ग इस चक्कर में पिस रहा है। सुप्रीम कोर्ट को आवाज उठाने के लिए साधुवाद !

Date: 06-10-26

यूपीआई पर कोई भी शुल्क अगर जरुरी है तो किसलिए ?

अमिताभ कांत

भारत की डिजिटल भुगतान की कहानी हालिया आर्थिक इतिहास के सबसे उल्लेखनीय बदलावों में से है। अगस्त में यूपीआई के जरिए 29.82 लाख करोड़ के 24.51 अरब ट्रांजैक्शन हुए। यानी रोजाना औसतन 79.1 करोड़ ट्रांजैक्शंस। जिस सिस्टम पर पहले साल में सिर्फ 1.79 करोड़ ट्रांजैक्शन थे, वह अब रोजमर्रा की आर्थिक जिंदगी का अहम हिस्सा बन चुका है। यूपीआई डिजिटल पब्लिक इंफ्रास्ट्रक्चर की व्यापक व्यवस्था से उभरा है। 'जेएएम' फ्रेमवर्क (जनधन, आधार और मोबाइल) ने बैंक खातों, डिजिटल पहचान और मोबाइल कनेक्टिविटी को जोड़ा। जनधन ने औपचारिक बैंकिंग तक पहुंच बढ़ाई। आधार ने व्यापक पहचान व्यवस्था मुहैया कराई। यूपीआई ने इसमें भुगतान की कार्यशील व्यवस्था जोड़ी, जिससे लोग एक-दूसरे को पैसे भेज सकें और तुरंत भुगतान मिल सके।

इस व्यवस्था को जानबूझकर खुला और इंटर-ऑपेरेबल बनाया गया था। बैंक और निजी कंपनियां साझा नेटवर्क पर एप्लिकेशन और सेवाएं विकसित कर सकती थीं, ताकि सार्वजनिक बुनियादी ढांचे के इर्दगिर्द प्रतिस्पर्धा व इनोवेशन को बढ़ावा मिले। नतीजतन, भारत ने ऐसा डिजिटल पेमेंट-इकोसिस्टम तैयार किया, जो अलग-अलग आय वर्ग के नागरिकों, भौगोलिक क्षेत्रों और विभिन्न प्रकार के कारोबारों तक पहुंचता है। लोगों के पास बैंक खाते और लेन-देन का सुविधाजनक डिजिटल मैकेनिज्म आया तो वित्तीय सेवाओं को बड़े पैमाने पर उपलब्ध कराना भी संभव हो पाया है।

लेकिन इतनी व्यापक सफलता एक अलग तरह की नीतिगत चुनौती भी लाती है- इंफ्रास्ट्रक्चर को इतना मजबूत बनाए रखना कि वह ग्रोथ को सहारा दे सके। यूपीआई के लिए बैंक, भुगतान प्रदाताओं और तकनीकी कंपनियाें को प्रोसेसिंग क्षमता, साइबर सुरक्षा, धोखाधड़ी की रोकथाम, कस्टमर सपोर्ट, विवादों के निपटारे और सिस्टम की मजबूती पर लगातार निवेश करना पड़ता है। तेजी से बढ़ते ट्रांजेक्शन के साथ जोखिम भी जटिल हो रहे हैं। इंफ्रास्ट्रक्चर को चलाने की लागत बढ़ रही है।

इसी संदर्भ में चुनिंदा यूपीआई ट्रांजैक्शन पर मर्चेंट डिस्काउंट रेट यानी 'एमडीआर' लागू किया जा रहा है। 15 अक्टूबर से 2 हजार रुपए से अधिक के चुनिंदा पर्सन-टु-मर्चेंट ट्रांजेक्शन पर 0.4% एमडीआर लागू होगा। 75 हजार रुपए या उससे अधिक के ट्रांजैक्शन के लिए इसकी अधिकतम सीमा 300 रुपए होगी। एमडीआर कोई

टैक्स नहीं है और इससे मिलने वाली राशि सरकार को नहीं जाएगी। यह भुगतान के इकोसिस्टम के भीतर लिया जाने वाला शुल्क है, जिसे इसमें शामिल संस्थाओं में बांटा जाएगा। एमडीआर फ्रेमवर्क को ऐसे तैयार किया गया है कि रोजमर्रा के डिजिटल भुगतान प्रभावित न हों। पर्सन-टु-पर्सन ट्रांजेक्शन मुफ्त रहेंगे, चाहे रकम कितनी भी हो। 2 हजार रुपए तक के मर्चेंट ट्रांजेक्शन भी मुफ्त रहेंगे। पी-2-एम फ्रेमवर्क के दायरे में आने वाले छोटे कारोबारियों- स्ट्रीट वेंडर्स, मोहल्ले की दुकानें और क्यूआर कोड के जरिए महीने में एक लाख रुपए तक प्राप्त करने वाले दुकानदारों के लिए भी एमडीआर शून्य रहेगा। यानी करीब 96% पी-2-एम ट्रांजैक्शन अप्रभावित रहने की उम्मीद है।

कुछ खास क्षेत्रों के लिए अतिरिक्त सुरक्षा उपाय भी रखे गए हैं। रेलवे, टेलीकॉम, इंश्योरेंस, ईंधन और एग्रीकल्चर इनपुट जैसे क्षेत्रों में 2 हजार रुपए से अधिक के ट्रांजैक्शन पर 5 रुपए का एमडीआर लगेगा।

म्यूचुअल फंड, सिक्योरिटीज, स्टॉकब्रोकर्स और डीलर से जुड़े कैपिटल मार्केट ट्रांजेक्शन पर 0.02% और अधिकतम 300 रुपए एमडीआर होगा। यह ग्राहकों से नहीं लिया जाना है। फ्रेमवर्क के तहत यह शुल्क मर्चेंट पेमेंट इकोसिस्टम के भीतर ही रखा गया है। यूपीआई के टिकाऊ आर्थिक मॉडल की ओर बढ़ने की जरूरत साफ नजर आती है। इतने बड़े पैमाने के इंफ्रास्ट्रक्चर के लिए निवेश जरूरी है। यूजर के लिए जीरो-कॉस्ट का मतलब यह नहीं कि सिस्टम के लिए भी कोई लागत नहीं लग रही। क्यूआर-कोड स्कैन करने में यूजर जो सहजता अनुभव करता है, उसके पीछे बैंकों, भुगतान प्रदाताओं, टेक प्लेटफॉर्मों और सुरक्षा प्रणालियों का जटिल नेटवर्क काम करता है। एक टिकाऊ मॉडल में इसे मेंटेन करने की लागत को पहचानना जरूरी है। यूजर के लिए जीरो-कॉस्ट का मतलब यह नहीं कि सिस्टम के लिए भी कोई लागत नहीं लग रही। क्यूआर-कोड स्कैन कर भुगतान करने में यूजर जो सहजता अनुभव करता है, उसके पीछे एक जटिल नेटवर्क काम कर रहा होता है।

दैनिक जागरण

Date: 06-10-26

बदलते भारत के अनुरूप बने यूपीएससी

प्रेमपाल शर्मा (शिक्षाविद् लेखक भारत सरकार में संयुक्त सचिव रहे हैं)

देश के शासन-प्रशासन में युवाओं की मेरिट के आधार पर और निष्पक्ष भर्ती के लिए एक अक्टूबर, 1926 को शुरू हुई संस्था संघ लोक सेवा आयोग (यूपीएससी) ने अपनी स्थापना के 100 वर्ष पूरे कर लिए हैं। सरदार वल्लभ भाई पटेल के सपनों के अनुरूप 1950 में इसका नाम संघ लोक सेवा आयोग रखा गया था। यह तसल्ली की बात है कि इस संस्था पर अब तक कोई बड़ा दाग नहीं लगा है। हाल में प्रधानमंत्री मोदी ने भी

इस पक्ष की सराहना की और सिक्के एवं टिकट भी जारी किए, लेकिन बदलते भारत और 21वीं सदी में क्या इतना ही पर्याप्त है? यूपीएससी में सुधार के लिए कई पक्षों पर तुरंत ध्यान देने की जरूरत है।

इस साल मई में हुई यूपीएससी की प्रारंभिक परीक्षा में ज्यादातर प्रश्न ऐसे थे, जिनका हमारे विश्वविद्यालयों की शिक्षा से दूर-दूर तक कोई संबंध नहीं था। प्रारंभिक परीक्षा और सी-सेट पर पिछले दस वर्षों में लगातार अंगुली उठती रही है। इस बात का सुबूत यह भी है कि अंतिम परिणाम में टाप करने वाले ज्यादातर उम्मीदवार प्रारंभिक परीक्षा में लगातार फेल होते रहे और फिर अचानक अंतिम परिणाम में टापर्स बन गए। इसकी गंभीरता को देखते हुए संसदीय समिति ने भी यूपीएससी से प्रारंभिक परीक्षा में सुधार की तुरंत सिफारिश की है। प्रारंभिक परीक्षा पर संदेह होने की वजह से मुख्य परीक्षा तक देश की सर्वश्रेष्ठ प्रतिभाएं नहीं जा पा रही हैं। आरक्षित वर्ग के प्रमाण-पत्र का मुद्दा भी बड़ा है। ईडब्ल्यूएस, ओबीसी आदि के फर्जी प्रमाण-पत्र की बाढ़ आई हुई है। दो साल पहले पूजा खेडकर का मामला कई हफ्तों तक सुर्खियों में रहा था। तब कई गड़बड़ियां सामने आईं। ओबीसी का नकली सर्टिफिकेट, दिव्यांग का सर्टिफिकेट, नाम में परिवर्तन क्या बिना अधिकारियों की मिलीभगत के संभव था? ओबीसी और क्रीमी लेयर का मामला भी सुप्रीम कोर्ट में चल रहा है। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि 2025 की परीक्षा में सफल हुए आईएएस, आईपीएस और दूसरे अधिकारी अभी तक मसूरी में ज्वाइन नहीं कर पाए हैं। पहले मसूरी में हर वर्ष एक सितंबर से ये अधिकारी नौकरी-प्रशिक्षण शुरू करते थे। यूपीएससी और नौकरशाही को इस पर ध्यान देने की जरूरत है। प्रश्न संस्थान की साख का है। आखिर 25 लाख युवा आयोग की तरफ एक यकीन से देख रहे हैं।

लगभग 15 साल पहले मुख्य परीक्षा में एथिक्स का पेपर शुरू किया गया था। क्या उसके वांछित परिणाम आ रहे हैं? ऐसा लगता तो नहीं, क्योंकि दर्जनों अधिकारी अपनी ट्रेनिंग के दौरान ही या शुरू के पांच वर्षों में भ्रष्टाचार में लिप्त पाए गए हैं। कुछ सख्त कदम और समीक्षा की जरूरत है। वैसे भी यूपीएससी हर 10 साल में अपनी परीक्षा प्रणाली को रिव्यू करता है। उम्मीदवारों की अधिकतम उम्मीद उम्र भी 21वीं सदी के नौजवानों की प्रतिभा को देखते हुए गले नहीं उतरती। अभी सामान्य वर्ग के उम्मीदवारों के लिए अधिकतम उम्र 32 वर्ष और आरक्षित वर्ग के लिए 37 वर्ष है। जब सिविल सेवाओं में भर्ती शुरू हुई थी तो न्यूनतम आयु 18 और 23 थी। फिर 24 और 26 साल हुई। वर्ष 1979 में कोठारी कमेटी ने अधिकतम उम्र 28 वर्ष किया, क्योंकि तब तक शिक्षा देश के दूर-दराज के गांवों में उतनी नहीं फैली थी। पिछले 50 वर्षों में तो साक्षरता में सुधार हुआ है, लेकिन उम्र 28 से बढ़कर 32 और 37 कर दी गई। जब आईआईटी से निकले नौजवान 21 साल की उम्र में बड़े से बड़े स्टार्टअप और तकनीकी ऊंचाइयां छू रहे हैं, तब नौकरशाही में इतनी अधिक उम्र के अभ्यर्थियों को लेना सरकार के हित में नहीं लगता। कोचिंग पर युवाओं की बढ़ती निर्भरता को कम करने का मामला भी देश के बार-बार सामने आता है, लेकिन कोई बड़ा सुधार अभी तक सामने नहीं आया है। कोचिंग संस्थानों की फीस बहुत महंगी होती है और कई बार हजारों छात्र 10 साल तक बड़े-बड़े शहरों में तैयारी करते रहते हैं। यह इस गरीब देश के अंतिम आदमी के लिए बहुत घातक है। इसलिए वैकल्पिक विषय को खत्म करके और उम्र सीमा को घटकर कुछ सुधार तुरंत करने की जरूरत है। अन्य बड़े सुधारों के लिए राष्ट्रीय स्तर पर कोठारी आयोग जैसा आयोग बनाया जाए, जिसमें अकादमिक और तकनीकी क्षेत्र के विद्वान शामिल हों।

यूपीएससी एक परीक्षा संस्था है। इसके साथ न केवल एनटीए, बल्कि राज्यों के सभी आयोगों को भी जोड़ा जाना चाहिए। यूपीएससी का अनुभव इनके काम आना चाहिए। अभी हाल में कर्नाटक लोक सेवा आयोग में भी तमाम गड़बड़ियां सामने आई हैं। एनटीए की परीक्षा प्रणाली पर भी लगातार अंगुली उठ रही है। सिर्फ पुलिस राज से कोई समाज या राष्ट्र आगे नहीं बढ़ सकता। देश के हर क्षेत्र और जीवन में भी नैतिकता एवं ईमानदारी की जरूरत है। सरदार पटेल ने जब भारतीय सिविल सेवा की पैरवी की थी तो उन्होंने इस देश को जोड़ने और मजबूत बनाने के हथियार के रूप में देखा था। उम्मीद है यूपीएससी आने वाले वर्षों में बिना किसी बड़े आंदोलन का इंतजार किए अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप तुरंत सुधार की तरफ बढ़ेगा। यही सुधार देश को विकसित भारत बनाएगा। यूपीएससी के सामने 100 वर्ष के बाद यह बड़ी चुनौती है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 06-10-26

भारत में ऊर्जा क्षेत्र एक अहम मोड़ पर

अजय शाह ,निकित अभयंकर ,अनमोल फडके (शाह एक्सकेडीआर फोरम में अनुसंधानकर्ता हैं। अभयंकर और फडके यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, बर्कले के इंडिया एनर्जी ऐंड क्लाइमेट सेंटर से जुड़े हैं)

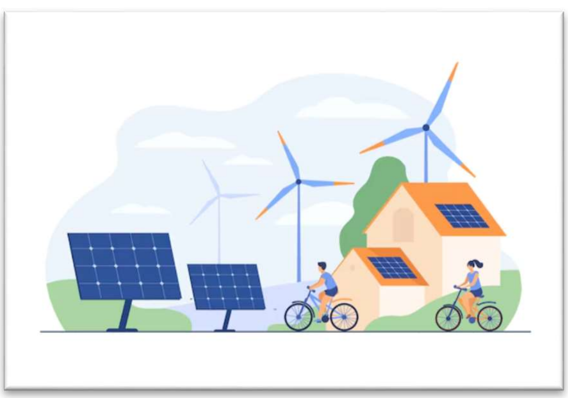

भारत में ऊर्जा क्षेत्र एक अहम पड़ाव से गुजर रहा है। सबसे पहले सौर ऊर्जा (सोलर) पैनल की कीमतें काफी कम हो गईं। अब सौर ऊर्जा की मदद से बिजली उत्पादन की लागत लगभग 2.5 रुपये प्रति किलोवाट-घंटा (केडब्ल्यूएच) है। मगर भारत में सूरज दिन में कुछ ही घंटे चमकता है। इस वजह से कोयले से चलने वाले ताप बिजली संयंत्रों के पक्ष में एक मजबूत तर्क है। फिर बैटरी की कीमतें भी नीचे खिसक गईं।

हाल में भारत में नीति-निर्माताओं ने वैश्विक मानकों के हिसाब से एक बहुत ही अनोखा सवाल पूछा। भारतीय सौर ऊर्जा निगम (एसईसीआई) ने बिजली क्षमता खरीदने के लिए एक नीलामी आयोजित की जिसमें उन्होंने थर्मल जनरेटर की उपलब्धता की शर्त रखी। जो इकाई सौर या पवन ऊर्जा का इस्तेमाल करना चाहती है उसे ताप बिजली संयंत्र जैसी सुविधा देने के लिए दिन में चार्ज होने वाली जरूरी बैटरी का भी इंतजाम करना पड़ता है। इस नीलामी में बिजली के लिए 5.25 रुपये प्रति केडब्ल्यूएच की कीमत तय हुई जो अगले 25 वर्षों तक नहीं बदलने की बात कही गई।

भारत में कोयले से चलने वाले ताप बिजली संयंत्रों के लिए कोई एक तुलनात्मक कीमत तय कर पाना मुश्किल है क्योंकि कोयला निकालने के अधिकार सरकार द्वारा बाजार में प्रचलित तरीकों से इतर दिए जाते हैं। मगर हम भारत में हाल के नए कोयला-बिजली अनुबंधों का अध्ययन करें तो उनकी कीमत लगभग 5.38 से 6.30 रुपये प्रति यूनिट है। एसईसीआई की ओर से तय की गई नवीकरणीय ऊर्जा की कीमत (जो ताप बिजली की कीमत के बराबर मानी जाती है) अब नए कोयले से बनने वाली बिजली की कीमत से 10 फीसदी कम है।

यह एक मील का पत्थर है। भारत में बिजली का हर खरीदार अब महंगी कोयला आधारित बिजली का विकल्प तलाशने की कोशिश करेगा। मगर सरकार नियंत्रित बिजली प्रणाली इस प्रक्रिया में खलल डालती है। यह क्रॉस-सब्सिडी लगाती है, पारेषण शुल्क वसूलती है और प्रशासनिक बाधाएं खड़ी करती है। मगर कीमत के स्तर पर 10 फीसदी का फायदा कंपनियों को इससे बाहर निकलने का रास्ता खोजने के लिए जरूरी प्रोत्साहन देता है।

पारंपरिक सोच यह थी कि बिजली खरीदने के मामले में कुछ ज्यादा नहीं किया जा सकता। आप ग्रिड की समस्याओं के बारे में शिकायत करते थे और बात वहीं खत्म हो जाती थी। अब हर खरीदार के पास इस बारे में सोचने का कारण है कि सौर ऊर्जा कैसे तैयार की जाए या खरीदी जाए और उसे इस्तेमाल की जगह तक कैसे पहुंचाई जाए ताकि कोयले से चलने वाले ताप संयंत्र से सीधे या परोक्ष रूप से होने वाली खरीदारी कम की जा सके।

इस स्थिति की सबसे खास बात यह है कि यह तो महज शुरुआत है और आने वाले समय में कई आश्चर्यजनक चीजें सामने आएंगी। चार ऐसी बातें हैं जो सौर ऊर्जा के विकल्प को बेहतर बनाती हैं।

पहली बात, ताप बिजली की तरह ही 5.25 रुपये प्रति केडब्ल्यूएच की दर 25 वर्षों के लिए तय है। भारत में 4 फीसदी की मुद्रास्फीति दर के कारण यह हर वर्ष सस्ती होती जाती है। पिछले 20 वर्षों में कोयले की वैश्विक कीमत (रुपये में) हर वर्ष लगभग 9 फीसदी बढ़ी है। दुनिया तेजी से नवीकरणीय ऊर्जा की ओर बढ़ रही है इसलिए कोयले की बहुत अधिक आपूर्ति होगी। तो मान लेते हैं कि भविष्य में कोयले की कीमत रुपये में हर वर्ष केवल 2 फीसदी बढ़ेगी। उस स्थिति में भी हम ताप बिजली की लागत के 50-60 फीसदी हिस्से पर हर वर्ष 2 फीसदी लागत बढ़ने की तुलना सौर ऊर्जा की शून्य फीसदी कीमत वृद्धि से कर रहे हैं। हर वर्ष कोयले का विकल्प कम प्रतिस्पर्द्धी होता जाता है।

दूसरी बात, ऊर्जा क्षेत्र के विशेषज्ञों ने कभी नहीं सोचा था कि भविष्य में ताप बिजली जैसी उत्पादन प्रक्रिया शामिल होगी। हर देश बिजली की कीमत बाजार आधारित करने की ओर बढ़ रहा है। पहले व्यावसायिक और औद्योगिक उपयोगकर्ताओं के लिए और फिर सभी के लिए। बाजार आधारित मूल्य प्रणाली में शाम के समय बिजली की कीमत अधिक होती है। मांग पक्ष स्वयं को समायोजित करेगा ताकि कोयले-जैसे बेस लोड की जरूरत न पड़े। एसईसीआई निविदा एक बहुत बड़े सवाल का जवाब देती है। वह सवाल यह है कि क्या सौर और बैटरी उस खेल में आगे निकल सकते हैं जिसकी शर्तें कोयले से तय होती हैं? अब हम जानते हैं कि

इसका जवाब 'हां' है। मगर भविष्य में निश्चित रूप से दिन के दौरान कीमतों में उतार-चढ़ाव होगा। तब सौर ऊर्जा की आर्थिक श्रेष्ठता और बढ़ जाएगी।

तीसरी बात, अगर 'राइट्स के सिद्धांत' के हिसाब से देखें तो बैटरी और सोलर पैनल पर आने वाली लागत के मोर्चे पर जो फायदे हुए हैं वे अभी खत्म नहीं हुए हैं। आने वाले वर्षों में कीमतों में ये फायदे जारी रहेंगे। नई सोलर और बैटरी क्षमता की पूंजी लागत कम होगी और कोयले की तुलना में सौर ऊर्जा की श्रेष्ठता बढ़ेगी।

चौथी बात, जो कंपनियां उन जगहों पर निर्यात करती हैं जहां 'कार्बन सीमा समायोजन ढांचा' लागू है उन्हें सौर ऊर्जा की श्रेष्ठता 10 फीसदी से अधिक लगेगी क्योंकि भारत के बाहर कार्बन मूल्य निर्धारण का इस्तेमाल अधिक हो रहा है।

हम सभी नवीकरणीय ऊर्जा और कार्बन उत्सर्जन कम करने की लंबी यात्रा से परिचित हैं। पिछले कुछ दशकों में इसमें धीरे-धीरे प्रगति हुई है। भारत में सौर क्षमता तो काफी बढ़ी है मगर ऊर्जा उत्पादन के स्रोतों के मिश्रण पर इसका असर अभी भी सीमित है। भारत में आज भी लगभग 74 फीसदी बिजली का उत्पादन जीवाश्म ईंधन से होता है। अनुभवी और प्रभावशाली लोगों का मानना है कि उन्होंने जीवन भर अक्षय ऊर्जा की बातें सुनी हैं मगर हालात में कोई खास बदलाव नहीं आया है।

अब हम उस निर्णायक मोड़ को पार कर चुके हैं जहां से चीजें बदलेंगी। सबसे अहम बात है आर्थिक लाभ। जब तक सौर ऊर्जा महंगी थी इसका विकास सीमित था। मगर अब सौर ऊर्जा की लागत-प्रभावशीलता जीवाश्म ईंधन से कहीं बेहतर हो गई है। अब हमें वित्तीय संपत्तियों की कीमतों और वास्तविक अर्थव्यवस्था में बड़े बदलाव देखने को मिलेंगे। अब यह केवल सलाह या अपील की बात नहीं बल्कि कारोबार की समझ की बात है। यह सिर्फ कोयले से होने वाले खतरनाक कार्बन-डाइऑक्साइड उत्सर्जन या उससे होने वाले भयानक वायु प्रदूषण की बात नहीं है। भारत में लागत कम रखने की चिंता करने वाला हर खरीदार कोयले से बनने वाली ताप बिजली को छोड़कर सौर ऊर्जा अपनाने के तरीके ढूंढ़ेगा।

वित्त और उद्योग के लिए इस अहम पड़ाव का क्या मतलब है?

पहला, बिजली खरीदने वाली कंपनियों के लिए ऊर्जा की खरीद केवल एक सामान्य प्रशासनिक काम नहीं माना जाना चाहिए। अब इस पर कारोबारी जगत के शीर्ष नेतृत्व और सलाहकार कंपनियों का ध्यान जरूरी है। सरकारी प्रणाली से हटकर सीधे बिजली लेने (ग्रिड-एक्सेस नियमों का लाभ उठाने) के मौके मौजूद हैं। इसमें कैप्टिव (निजी इस्तेमाल के लिए) उत्पादन, ग्रुप कैप्टिव स्ट्रक्चर और अंतर-राज्यीय पारेषण प्रणाली के जरिये बिजली लेने जैसे तरीके शामिल हो सकते हैं।

दूसरा, अक्षय ऊर्जा कंपनियों के लिए निवेश और विकास की संभावनाओं के द्वार खोलती है। इन उपक्रमों में पूंजी का प्रवाह होगा जिससे वित्त और अर्थव्यवस्था में तेजी आएगी।

तीसरा, कोयले से चलने वाले ताप बिजली संयंत्रों में निवेश करने वाली कंपनियों के लिए हालात अब पहले जैसे नहीं रह गए हैं। कोयले में नए निवेश और महंगे कोयले से संयंत्रों की व्यवहार्यता कम हो रही है। उन्हें कम इस्तेमाल और घटते मार्जिन का सामना करना पड़ेगा। कर्जदाताओं और इक्विटी निवेशकों को इन निवेशों का नए सिरे से मूल्यांकन करने की जरूरत है।

जनसत्ता

Date: 06-10-26

भरोसे का सवाल

संपादकीय

भारतीय लोकतंत्र में चुनाव आयोग की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उसकी जिम्मेदारियों का मूल्यांकन मतदाता सूची तैयार करने से लेकर निष्पक्ष एवं पारदर्शी तरीके से मतदान सुनिश्चित कराने तक से किया जाता है इसलिए लोकतांत्रिक व्यवस्था में इस संवैधानिक संस्था की विश्वसनीयता को बनाए रखना बेहद जरूरी है। मगर मतदाता सूची के विशेष गहन पुनरीक्षण बानी एसआइआर की प्रक्रिया को लेकर शुरू से ही जिस तरह के सवाल उठ रहे हैं, उससे राजनीतिक और सामाजिक स्तर पर गंभीर चिंताएं उभरी हैं। खासकर विभिन्न राज्यों में लाखों की संख्या में नागरिकों को मतदाता सूची से बाहर कर देने से शासन के चयन में उनकी भागीदारी खत्म हो जाने के साथ-साथ उनके सामने कई तरह की चुनौतियां पैदा हो गई हैं। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति उज्जल भुइयां ने भी बीते रविवार को हैदराबाद में एक कार्यक्रम में इस चिंता को रेखांकित करते हुए कहा कि नागरिकों को उनके मताधिकार से वंचित करने वाली कोई भी प्रक्रिया संवैधानिक व्यवस्था के खिलाफ है और उसे किसी भी तरह की दलीलों के जरिए उचित नहीं ठहराया जा सकता।

एसआईआर प्रक्रिया पर उठ रहे सवालों की गंभीरता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि हाल में देश भर में करीब तेरह करोड़ लोगों को मतदाता सूची से बाहर कर दिए जाने की खबरें आई है। इतने बड़े पैमाने पर अगर देश के नागरिक अपने मताधिकार से पाँचत हो जाएं तो क्या इसे लोकतांत्रिक व्यवस्था में मतदाता सूची की शुचिता के दृष्टिगत शुभ संकेत के तौर पर देखा जाएगा? किसी नागरिक का मतदाता बनना और उसके मतदान करने का अधिकार स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव की आधारशिला होता है केवल तकनीकी पहलुओं के आधार पर उसकी पहचान से मताधिकार को अलग कर देना क्या लोकतंत्र में उसकी सबसे महत्त्वपूर्ण भागीदारी को खत्म कर देना नहीं है? न्यायमूर्ति उज्जल भुइयां ने भी अपनी टिप्पणी में कहा है कि देश का संविधान नागरिकों को दो वर्गों में नहीं बांटता, जिनमें से एक वर्ग मताधिकार प्राप्त हो और दूसरा

मताधिकार से वंचित । यदि किसी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर लोग अपने ही देश में दोयम दर्जे के नागरिक बन जाएं, तो उसमें सुधार की राह निकालना अत्यंत आवश्यक हो जाता है।

दूसरी ओर, एसआइआर के तहत फार्म-6 को लेकर सर्वोच्च न्यायालय की ओर से सोमवार को स्थिति स्पष्ट किए जाने से चुनाव आयोग के उस दावे को लेकर भी सवाल खड़े हो गए हैं, जिसमें कहा गया था कि शीर्ष अदालत ने इस फार्म की घोषणा को सही ठहराया है जबकि न्यायालय ने साफतौर पर कहा कि उसने इस फार्म में किसी भी तरह के बदलाव को मंजूरी नहीं दी है। इससे चुनाव आयोग की विश्वसनीयता को लेकर आम नागरिकों के बीच भरोसे का संकट और गहरा हो गया है। यही नहीं, शीर्ष अदालत ने आयोग के भीतर मतभेदों के दावे से जुड़े मामले में निर्वाचन आयोग और केंद्र सरकार को नोटिस जारी कर कहा कि जो भी फैसला कानून के अनुरूप नहीं पाया जाएगा, उसे रद्द कर दिया जाएगा। इससे स्पष्ट है कि मतदाता सूची में किसी भी तरह के संशोधन के दौरान कानून, प्रक्रिया और नागरिकों के अधिकारों के बीच संतुलन कितना आवश्यक है। किसी भी चुनावी सुधार प्रक्रिया की सफलता इस बात से तय नहीं होती कि मतदाता सूची से कितने लोग बाहर किए गए और कितने नए नाम जोड़े गए, बल्कि इससे होती है कि पात्र नागरिकों के अधिकार पूरी तरह सुरक्षित रहें।

Date: 06-10-26

संवाद के बजाय

संपादकीय

लोकतंत्र में असहमति अवांछित शोर नहीं, बल्कि उसकी जीवंतता का प्रमाण है। ऐसे में जब देश के विभिन्न हिस्सों में युवा शिक्षा, रोजगार, अवसर और अधिकारों से जुड़े सवालों को लेकर सड़कों पर उतरते हैं, तो सबसे पहले उनके सवालों को सुनने की जरूरत है। पढ़ाई और करिअर बनाने की उम्र में एक समूची पीढ़ी अपनी ऊर्जा आंदोलन में लगाने को विवश हो, तो यह केवल उसकी बेचैनी नहीं, बल्कि व्यवस्था के लिए भी आत्ममंथन का विषय होना चाहिए। विडंबना यह है कि आंदोलित युवाओं से संवाद करने और समस्याओं का समाधान खोजने के बजाय सरकारी तंत्र सख्ती को ही रास्ता मान लेता है। कानून-व्यवस्था बनाए रखना सरकार की जिम्मेदारी है, लेकिन हर असहमति को संदेह की नजर से देखना लोकतंत्र के लिए स्वस्थ संकेत नहीं । विरोध और अराजकता एक नहीं हैं। सवाल उठाना व्यवस्था को चुनौती देना नहीं है। जब शासन नागरिकों के सवालों का उत्तर तर्क और संवाद के बजाय शक्ति से देने लगे, तो लोकतंत्र आदेश की भाषा में बदलने लगता है।

हालांकि लोकतंत्र की ताकत कठोरता में नहीं, आलोचना सुनने और अपनी नीतियों की समीक्षा करने की क्षमता में होती है। युवाओं के आंदोलनों को भीड़ और नारों के रूप में देखना आसान है, जबकि कठिन काम यह

समझना है कि आखिर ऐसी कौन-सी परिस्थितियां हैं, जो भविष्य बनाने की उम्र में उन्हें सड़क पर आने को विवश करती हैं। उनके सवालों में अगर व्यवस्था की कमी दिखती है, तो उसे दबाने के बजाय खामी को दूर करना चाहिए। अफसोस की बात यह है कि देश के अलग-अलग हिस्सों और खासतौर पर दिल्ली में युवाओं के आंदोलन के प्रति पुलिस का जैसा रवैया देखा जा रहा है, वह नागरिकों के संवैधानिक अधिकारों और लोकतंत्र के लिए चिंताजनक है। सत्ता की आलोचना, न्यायपूर्ण नीतियों की मांग और व्यवस्था में सुधार जैसे सवाल सुनने और समाधान की मांग करते हैं, न कि दमन के सहारे चुप कराए जाने की सख्ती से कुछ समय के लिए सन्नाटा पैदा किया जा सकता है, लेकिन यह समाधान नहीं है। देशहित के सवालों पर सड़क पर उतरे युवाओं के साथ संवादहीनता की स्थिति से समस्या और भी जटिल हो सकती है। युवाओं के सवालों को सुनना सरकार की जिम्मेदारी है।

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 06-10-26

मस्तिष्क और नोबेल

संपादकीय

स्मृतियों, भावनाओं और व्यवहारों का निर्माण मस्तिष्क में किस तरह होता है, इसे पूरी तरह समझना इंसानों का पुराना सपना है। इस सपने को साकार करने की ओर कदम बढ़ाते तीन वैज्ञानिकों - कार्ल डीसेरोथ, पीटर हेगेमैन और जॉर्ज नागल को चिकित्सा क्षेत्र में योगदान के लिए नोबेल सम्मान देने की घोषणा हुई है। इस विशिष्ट विज्ञान को ऑप्टोजेनेटिक्स कहा जाता है और इससे जुड़े अध्ययन में अनेक वैज्ञानिक लगे हुए हैं, लेकिन इन तीन वैज्ञानिकों की सफलता को स्वाभाविक ही रेखांकित करना जरूरी था। साल 2026 के लिए शरीर क्रिया विज्ञान या चिकित्सा का यह नोबेल वास्तव में तंत्रिका विज्ञान और इंसानी दिमाग को समझने की दिशा में बहुत अहम कदम है। संक्षेप में समझें, तो तीन वैज्ञानिकों ने मिलकर प्रकाश के उपयोग से विशिष्ट कोशिकाओं की गतिविधियों को नियंत्रित करने की क्षमता विकसित की है। ऑप्टोजेनेटिक्स जीवित मस्तिष्क में व्यक्तिगत तंत्रिका कोशिकाओं की गतिविधि को चालू या बंद करने को संभव बनाता है। इस विधि का उपयोग अब दुनिया भर की प्रयोगशालाओं में मस्तिष्क के अब तक अबूझ रहस्यों को उजागर करने के लिए किया जा रहा है।

इस नोबेल से मानव मस्तिष्क को लेकर चल रहे आवश्यक शोध-अध्ययन को बहुत बल मिलेगा। यह समझने की बात है कि शरीर के बाकी अंगों पर चिकित्सा विज्ञान का लगभग नियंत्रण हो चुका है, किंतु दिमाग को समझना अभी भी मुश्किल है। यही कारण है, दिमाग से जुड़ी बीमारियों का इलाज आसान नहीं है। किसी तरह

की लत, अंधता, अवसाद, स्मृति संबंधी विकारों को दूर करना दिनों-दिन जरूरी होता जा रहा है। दुनिया में डिमेंशिया की अगर बात करें, तो करीब 5.5 करोड़ दर्ज रोगी हैं। प्रति तीन सेकंड एक डिमेंशिया रोगी सामने आ रहा है। यह तो दिमाग संबंधी केवल एक रोग के आंकड़े हैं। समग्रता में देखें, तो यह एहसास आसानी से हो जाता है कि दिमाग को पूरी तरह से समझना कितना जरूरी है। स्वीडन के कैरोलिंस्का इंस्टीट्यूट मेडिकल यूनिवर्सिटी की नोबेल सभा द्वारा 54 वर्षीय अमेरिकी डीसेरोथ, 71 वर्षीय जर्मन हेगेमैन और 73 वर्षीय जर्मन नागल का चयन किया गया है। इन वैज्ञानिकों ने चैनलरोडोप्सिन नामक एक प्रोटीन की खोज की है, जिसमें अद्वितीय गुण हैं। उन्होंने पाया कि प्रोटीन को किसी भी प्रकार की कोशिका में डाला जाए, कोशिकाएं प्रकाश के प्रति संवेदनशील हो जाती हैं। इसके बाद, डीसेरोथ ने चैनलरोडोप्सिन जीन या प्रोटीन का प्रयोग चूहों की तंत्रिका कोशिकाओं पर किया और उन्हें बड़ी कामयाबी मिली। यह उपलब्धि कम से कम दो दशक की कड़ी मेहनत से हासिल हुई है। यह भी बताते चलें कि इस विशेष प्रोटीन की खोज एककोशिकीय शैवाल से की गई है।

यह किसी खुशखबरी से कम नहीं कि नोबेल मिलने से पहले ही इस वैज्ञानिक खोज का व्यावहारिक अध्ययन शुरू हो चुका है। उम्मीद करनी चाहिए कि चिकित्सकीय उपयोग जल्दी शुरू हो जाएगा। यह विज्ञान या ऑप्टोजेनेटिक्स कोई हवा-हवाई बात नहीं है। शोधकर्ता दृष्टिबाधितों की दृष्टि बहाल करने के प्रयासों में ऑप्टोजेनेटिक्स का उपयोग कर रहे हैं। नोबेल से सम्मानित हुए वैज्ञानिक-प्रोफेसरों को अपने इस शोध में दिलो-जान से जुटे रहना चाहिए। आज जब कई देश युद्ध या छद्मयुद्ध में खर्च हो रहे हैं, तब यह बहुत सुखद है कि विभिन्न देशों के वैज्ञानिक मिलकर उपयोगी आविष्कार कर रहे हैं। वाकई, वैज्ञानिक तरक्की का कोई विकल्प नहीं है।